मैं शिक्षिका क्यों बनी

गंगा गुप्ता

स्कूल की छात्रा से शुरू करके सफर शिक्षिका बनने तक। लेकिन शुरुआत कैसे हुई . . .? शायद ही कभी कोई बड़ा गौर करता हो कि उनकी अपनी जीवन गतिविधि का बच्चों पर कैसा असर पड़ता है? कब कौन-सी चीज़ उन्हें प्रभावित कर जाती है। कक्षा में टोली की नायक बनने से उभरी शिक्षिका बनने की ललक ने उसे घर के बंधनों को तोड़ने में मदद की। और भी अनुभव जुड़े और वह प्रेरित हुई सीखने वाले और सिखाने वालों के बीच के संबंधों को टटोलने के लिए।

मुझे अभी भी याद है कि कक्षा पांच में हमारी बहिनजी, जिन्हें हम सभी बच्चे बहुत चाहते थे। उन्होंने हमारी कक्षा में टोलियां बना दी थीं और हर टोली का एक-एक नायक भी। हर टोली में छह-सात बच्चे होते थे। नायक का काम होता था कि अपनी टोली के बच्चों के साथ पढ़ना, उन्हें पढ़ाना, गणित के सवाल देना व समझाना। जब बहनजी नहीं आती या कक्षा में नहीं होती तो हम (नायक) ही अपनी-अपनी टोली को शुद्धलेख बोलते, गणित के सवाल देते, पहाड़े याद कराते या गिनती लिखाते और

उन्हें जांचते। नायक पांचों टोलियों में से किसी भी टोली में चला जाता, और बच्चों को देखता कि उसकी टोली के मुकाबले दूसरी टोली के बच्चे कितने अच्छे हैं यानी पढ़ने में तेज़ हैं या कम तेज़ हैं। कोई भी नायक जब किसी टोली में जाता तो टोली के बच्चे खड़े होते और उससे बहिनजी जैसा व्यवहार करते। हम लोग अपनी-अपनी टोली के बच्चों को हर प्रकार से ज़्यादा तेज़ बनाने की कोशिश करते।

शिक्षिका बनने की ललक शायद तभी से मेरे मन में बस गई थी। पता नहीं इस प्रकार टोली बनाना कितना सही था पर अब सोचती हूं तो लगता है कि टोली में पढ़ना या पढ़ाना तो ठीक था परन्तु बच्चों को शिक्षिका जैसा डांटना या टोली में जब नायक जाता तो पूरे बच्चों का खड़ा होना जैसी बातें सब बेकार थीं। खैर ये तो मेरा अनुभव था जिसने मेरे मन के किसी कोने में शिक्षिका बनने की ललक छोड़ दी थी।

. . . और मैं शिक्षिका बनी

बी. ए. प्रथम वर्ष के बाद मुझे शिक्षिका भर्ती का एक फॉर्म कहीं से मिला और मैंने इसे वैसे ही शौक से भर दिया। एक साल बाद मैंने मिनी पी. एस. सी. की लिखित परीक्षा दी और इस बात को जब मैं लगभग भूल-सी गई थी तभी 18 अगस्त 1986 को मुझे पाठई प्राथमिक शाला में शिक्षिका पद पर नियुक्ति संबंधी आदेश मिला। मैं बहुत खुश थी कि मेरी बचपन की इच्छा पूरी होने जा रही थी। घर में हल्के से विरोध के

बाद भी 20 अगस्त 1986 को मैंने स्कूल में शिक्षिका का पद सम्हाला।

ज्वाइन करने के पहले बड़ा डर लग रहा था कि पता नहीं बच्चे कैसे होंगे, माहौल कैसा मिलेगा आदि। पहले दिन करीब दो घंटे स्कूल में रहने के बाद मैं वापस आ गई। संयोग से इस स्कूल की हैड मास्टर वही बहिनजी थीं जिन्होंने तीसरी कक्षा में हमें पढ़ाया था। इससे कुछ राहत भी मिली और थोड़ा डर भी लगा। क्योंकि प्राथमिक स्कूल के दिनों में पढ़ते समय इन्हीं बहिनजी से हमें सबसे अधिक डर लगा करता था। ये हमें कुछ ज़्यादा ही डांट लगाया करती थीं।

खैर कुछ दिन तो वहां व्यवस्थित होने में लग गए। पाठई हमारे गांव से करीब चार-पांच कि. मी. दूर है। मैं पाठई साइकिल से जाया करती थी। रास्ते के दोनों ओर हरियाली थी, सागौन के ऊंचे-ऊंचे पेड़ बहुत ही खूबसूरत लगते थे। हमारा स्कूल भी गांव से बाहर शांत जगह में था। हमें वहां बड़ा सुकून मिलता था।

अब आई पढ़ाने की बारी। सबसे पहले मुझे तीसरी कक्षा मिली। मुख्य काम तो बच्चों को गिनती सिखाने, अंक पहचानना व पढ़ना सिखाने का था। मुझे ये ही समझ नहीं आता था कि 10 और 1 ग्यारह, 10 और दो बारह क्यों पढ़ाया जाता है; सीधे ग्यारह, बारह क्यों नहीं पढ़ाते। इसी प्रकार बारह खड़ी सीधे ही पढ़ना कैसे सीख सकते हैं। खैर, बिना कुछ समझे परंपरागत तरीके से मैंने तीसरी कक्षा को पढ़ाना शुरू किया। पढ़ाने के बारे में मुझे कुछ स्पष्ट समझ नहीं थी। हर बार उलझ जाती थी, जैसे कि महत्तम समापवर्तक समझाना है, तो यह यांत्रिक तरीके से करना तो आता था, पर इसका अर्थ सरल रूप में समझ नहीं आता था। 1987 में 'एकलव्य संस्था' के लोग हमारे स्कूल को प्रायोगिक परीक्षण कार्यक्रम में शामिल करने के लिए आए। इस कार्यक्रम के दौरान शिक्षकों को गर्मी की छुट्टी में 12 से 15 दिन का प्रशिक्षण व दीपावली के अवकाश में सात-आठ दिन का प्रशिक्षण दिया जाता था और हर महीने गोष्ठियां भी आयोजित की जाती थीं।

प्रशिक्षण यानी सीखने का मौका

इन प्रशिक्षणों में वास्तव में मुझे मेरी समस्याओं से जूझने का मौका मिला। सबसे पहले हम सभी अपनी कक्षाओं के अनुभव बताते थे। पढ़ाने में क्या-क्या दिक्कतें आती हैं, वगैरह। इन बिन्दुओं पर सभी शिक्षकों में बातचीत होती फिर कुछ सरल तरीकों के बारे में सुझाव आते। हम सबने माना कि बच्चों से कुछ ऐसी गतिविधियां करवानी चाहिए जिनमें

ठोस वस्तुओं का सहारा लिया गया हो। जैसे पहाड़े सिखाने के लिए हम कंकड़ों का, पत्तियों, सीकों आदि का उपयोग कर सकते हैं। जिस संख्या का पहाड़ा सिखाना हो उस संख्या की ढेरी बनवाई जाएं। उन ढेरियों से बच्चों में आपस में खेल करवाएं, जिससे बच्चे मज़े ले लेकर गतिविधियां भी करें और आसानी से उस दक्षता को भी हासिल कर लें जो उनसे अपेक्षित है।

हम शिक्षकों ने खूब कहानियां बनाई, ढेर चित्र बनाए, कविताएं गाईं और कविताएं बनाईं। पढ़ना सिखाने के लिए शब्द पहचान, कहानियों में ही अक्षर पहचान, वाक्य बनाने और स्वतंत्र लेखन का कार्य आदि हमने कोर ग्रुप के व्यक्तियों के साथ मिलकर तैयार किया।

हम लोग प्रशिक्षण में ये सब करते और स्कूल जाकर बच्चों के साथ नई-नई गतिविधियां करते। उसके बारे में नोट करते कि एक-एक बच्चे ने कैसे पढ़ना सीखा? कहां-कहां उन्हें कैसी दिक्कतें आईं। ये सब डायरी में लिखा। आगे की योजना बनाने में डायरी से काफी मदद मिली।

सच, मुझे तो कक्षा में पढ़ाने में बहुत मज़ा आता था। कई चीज़ें तो

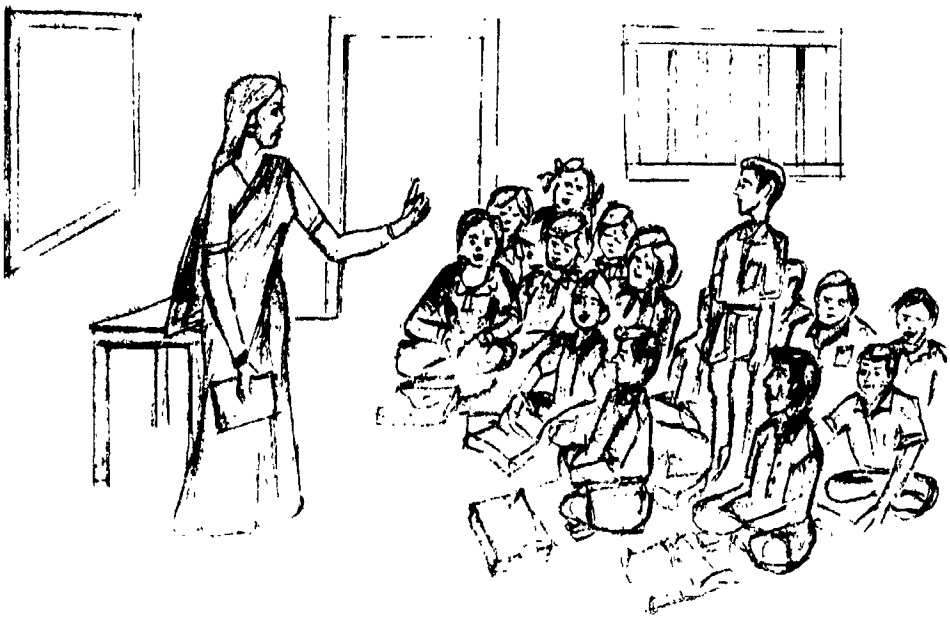

मैंने बच्चों से सीखीं। तीसरी कक्षा के बच्चे हिन्दी कहानियों का गोंडी में अनुवाद करके कहानी बताते। कहानी के पात्रों की नकल करते। बच्चों के साथ हमारा संबंध बिलकुल दोस्ताना हो गया था। कड़े अनुशासन का मेरी कक्षा में अभाव था, पर बच्चे अपनी हर बात निःसंकोच मुझसे कहते थे।

मेरे पाठई स्कूल के कक्षा तीन के बच्चे, बिना हिज्जे के सीधे अर्थ ग्रहण करते हुए पढ़ने लगे थे। इस प्रशिक्षण की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि सब सीखने वाले थे और सभी सिखाने वाले भी। कोर ग्रुप के व्यक्ति शिक्षकों से साहब वाला संबंध न रखकर दोस्ताना संबंध रखते थे। प्रशिक्षण के 15 दिन सीखने-सिखाने में कब खत्म हो जाते पता ही नहीं चलता था। प्रशिक्षण में बहुत ही अच्छा लगता था। कई चीज़ों जैसे 10 और 11 में स्थानीय मान की समझ, भिन्न के जोड़, ठोस चीज़ों से अभ्यास करके भिन्न की समझ आदि ऐसी कई चीज़ें मुझमें इन्हीं प्रशिक्षणों से विकसित हुईं।

कोर ग्रुप के व्यक्ति हमारे स्कूल में आकर हमारे बच्चों के साथ काम करते। जब हम इन्हें काम करते हुए देखते तो हम भी और जोश के साथ बच्चों के साथ नई-नई गतिविधियां करवाते। मेरे गांव के बच्चे शहर के सामान्य स्कूल के बच्चों से बेहतर करते थे। इस तरह करीब नौ साल इस पाठ्यक्रम

को पढ़ाने के बाद मेरा तबादला सिवनी ज़िले की घंसौर तहसील की कन्या माध्यमिक शाला में हो गया।

घंसौर: एक नया मोर्चा

घंसौर में शुरू के तीन सालों में मैंने मिडिल स्कूल के विद्यार्थियों को पढ़ाया। यहां मुझे सातवीं की विज्ञान में कई दिक्कतें आती थीं, लेकिन पूर्व अनुभव के आधार पर मैं उन्हें सरल करके बच्चों को बता देती थी। यहां का नया माहौल, अनुशासन, सब कुछ बदला-बदला-सा था। कक्षा भी बड़ी थी और बच्चे भी बड़े। पहले मैंने सोचा कि बड़े बच्चों के साथ थोड़े अनुशासन में रहकर पढ़ाऊंगी। बाद में मुझे समझ में आया कि मैंने कक्षा में अनुशासन तो बना लिया पर शायद बच्चों से उस गहराई से जुड़ाव नहीं बना पाई जैसा कि पाठई के स्कूल में बनाया था। फिर मैंने चौथी कक्षा को पढ़ाना आरंभ कर दिया।

लेकिन इसमें मध्य प्रदेश का भूगोल, बुंदेलखंड-बघेलखंड का पठार, अक्षांश, देशांश, मध्य प्रदेश के खनिज जैसी कई बातें थी; यह सब बच्चों को कैसे समझाऊं – मुझे समझ नहीं आता था। हिन्दी के पाठों को तो मैं अपने ढंग से पढ़ा पाती हूं, पर गणित और भूगोल फिर अपनी पुरानी दिक्कतों के साथ आकर खड़े हो गए हैं। कक्षा चार में मैंने अनुशासनवाली नीति को फिर से छोड़ दिया है।

अब बच्चे काफी घुल मिल गए हैं, पर फिर भी मुझे लगता है कि मैं उनके साथ पूरी ईमानदारी से काम नहीं कर पा रही हूं। मुझे पाठई जैसा माहौल यहां नहीं मिला और न ही मैं उस जगह जैसा यहां कुछ कर पाई। शायद ये यहां की परिस्थिति का मेरी मानसिकता पर प्रभाव भी हो। फिर भी मैंने कक्षा चार में तीन-चार ऐसी लड़कियों के साथ लगकर काम किया, जिन्हें पगली या कम बुद्धि समझा जाता है और इसके परिणाम काफी हद तक सकारात्मक आए हैं।

गंगा गुप्ता: शासकीय कन्या माध्यमिक शाला, घंसौर में पढ़ाती हैं। घंसौर मध्यप्रदेश के सिवनी ज़िले का एक कस्बा है।